त्रिदोष

यद्यपि मानव शरीर पञ्चमहाभूतों से उत्पन्न हुआ है, किन्तु उसका परिचालन जल, अग्नि और वायु तीन महाभूतों के द्वारा ही होता है। इस समस्त संसार में यह तीनों पञ्चमहाभूत सूर्य, चन्द्र और वायु के रूप में प्राकृतिक और शरीरिक रूप में इनका प्रतिनिधित्व वात (वायु) पित (सूर्य) और कफ (जल) शरीरिक क्रियाओं का संचालन करते हैं। इन तीनों का कार्य शरीर में इस प्रकार का है- वायु का कार्य विक्षेप अर्थात् शारीरिक गतियों का संचालन और नियन्त्रण करना है, पित्त का कार्य आदान अर्थात् आग्नेय गुणों के कारण पाचनकर्म और उसका शोषण करना है और कफ का कार्य विसर्ग अर्थात् जलीय गुणों के कारण शरीर में रस का संचार करना है या पोषण करना है। 'दूषयन्ति मनः शरीरं च इति दोषाः' अर्थात् मन और शरीर को दूषित करने के गुण के कारण, इन्हें दोष कहा जाता है। दूषनात् दोषाः धारणात् धातवः अर्थात् वात, पित्त और कफ जब दूषित होकर, रोग उत्पन्न करते हैं, तो दोष कहलाते हैं तथा जब वे साम्यवस्था में रहते हैं, तो सप्त धातुओं व शरीर का ।धारण करके शरीर को संतुलित करते हैं। चिकित्सा शास्त्रीय शब्दावली में इसे त्रि+दोष अर्थात् वात पित और कफ को संयुक्त होकर रोगावस्था में त्रिदोष कहलाते हैं। वातादि दोष विषमावस्था में रोग को उत्पन्न करते हैं और साम्यवास्था में स्वास्थ्यवर्धक होते हैं। अस्वस्थ्य शरीर को स्वस्थ करने के लिए तीनों दोषों को साम्यावस्था में लाना आवश्यक है। यही आयुर्वेदीय चिकित्सा का मूल है-

1. वातः-वात मानव शरीर का मूल तत्व है, जो शरीर के सभी अङ्ग और उपाङ्गादि को गति देता है और उनका नियन्त्रण करता है। वात में आकाश और वायु दो महाभूतों की प्रधानता होती है। वात इन महाभूतीय गुण के कारण शरीर पर हावी रहता है और पित्त और कफ पर भी नियन्त्रण रखता है।

आयुर्वेद के अनुसार गर्भावस्था के समय ही बच्चे में तीनों दोषों की समानावस्था होने पर शिशु स्वस्थ, विषमावस्था में गर्भ का न ठहरना, भूर्ण का विकास न होना इत्यादि और यदि कोई दोष अधिक मात्रा में है, तो उस दोष के अनुसार बच्चे का गुण, स्वभाव एवं शारीरिक रचना का विकास होता है। जिस प्रकार वात युक्त प्रकृति वाला मनुष्य थोड़ी सी असावधानी के कारण वात दोष से ग्रसित हो जाता है।

शरीर में वात का आश्रय स्थल नाभि के नीचे का भाग, छोटी और बड़ी आँते, कमर, जंघा और हड्डियाँ आदि हैं। इसके सकारात्मक गुणों में कल्पना शीलता, संवदेन, लचीलापन और उल्लासित रहना होता है। वात के आसामान्य होने पर वजन कम होना, शक्ति का ह्रास, चिन्ता, क्रोध इत्यादि उत्पन्न होने लगता है। गठिया, कब्ज, हृदय रोग, मानसिक विकार, उच्च रक्तचाप इत्यादि रोग वात के अनियमित होने के कारण होते हैं।

वात पाँच प्रकारक माना गया है -

1. 'प्राण' - प्राण वायु सिर, ग्रीवा तथा वक्ष स्थल में स्थित रहता है। यह मस्तिष्क के सभी कार्यों को नियन्त्रित रखता है। प्राण वायु श्वसन क्रिया को भी नियन्त्रित करती है।

2. 'उदान' - उदानवायु की स्थिति वक्षस्थल और गर्दन में मानी जाती है। यह वाणी को निर्देशित करती है।

3. 'व्यान'- व्यान वायु सम्पूर्ण शरीर में वास करती है और शरीर के संचार और गतियों पर नियन्त्रण रखती है।4. 'समान' - समानवायु का आश्रय स्थल छोटी और बड़ी आंत में है। समान वायु भोजन के पाचन तथा मल-दूषणों के पृथकीकरण को संचालित करती है। यह शरीर के ताप, द्रव्य पदार्थों, पित्त और कफ के कार्यों का भी नियन्त्रण करती है।

5. 'अपानवायु' - अपान वायु मूत्राशय में स्थित है। अपान वायु का मुख्य कार्य मल, मूत्र और वीर्य आदि का निष्कासन करना है। यह वायु स्त्रियों के मासिक धर्म का भी नियन्त्रण करती है।

वात प्रधान व्यक्ति शरीर से कमजोर, हल्का और पतले शरीर वाला होता है, उसकी त्वचा रुक्ष, बाल रूखे, आंखे शुष्क, स्वभाव में चंचलता, मानसिक रूप से कमजोर होते हैं। इन्हें सामान्यः श्वास, गला बैठना, आँख, कान, नाक, मानसिक विकार इत्यादि की सम्भावना रहती है। वात हमारे शरीर में संकोचन, प्रसारण, उत्कर्षण, अन्तर्नयन, बहिर्नयन, श्वास-उच्छवास, गमन आदि कामों का निष्पादन करता है। रक्तसंचार, मल -मूत्रादि विसर्जन, पाचन, रसस्राव, हृदय स्पन्दन आदि कार्य भी वात के

द्वारा ही होते हैं।

2. पित्त-पित्त शरीर का अग्नितत्त्व है। जो मानवीय ताप को धारण करता है, भोजन का पाचन कर शरीर के लिए उपयोगी द्रव्यों का निर्माण करता है। यह शरीर में पाचन-संतुलन, रसायनीकरण, यकृत, आमाश्य आदि की क्रियाओं का संचालक है। पित्त अग्नि (तेजस् और जरा (आप) महाभूत के संयोग से युक्त होता है।

शरीर में पित्त का आश्रय स्थल वक्ष, नाभि का मध्य भाग, स्वेद, लसीका, रक्त का पाचन संस्थान और मूत्राशय होता है। इसके कारण शरीर में प्रज्ञा, दृढ़ विश्वास, उद्यमशीलता और आह्लादपूर्ण होता है। पित्त के अनियन्त्रित होने पर पित्त की अधिकता हो जायेगी, जठराग्नि मन्द हो जायेगी, विदग्धा जीर्ण, कामला, शोथ, ज्वरादि अनेक रोग हो जाते है और शरीर में मेद धातु की वृद्धि, शरीर में जलन, पागलपन, अजीर्णता, मधुमेह, जरोदर इत्यादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। पित्त पाँच प्रकार का होता है- 'आरोचक'- आरोचक पित्त प्रकार की स्थिति शरीर में आँख होती है। यह आँखों के रंग और देखने की शक्ति का कारण होता है। साधकपित्त - यह हृदय में रहता है। यह मानवीय शरीर के बौद्धिता, स्मरण शक्ति और उत्साह के लिए शक्ति प्रदान करता है। 'भ्राजक' पित्त की स्थिति त्वचा में होती है। यह शरीर के ताप को नियन्त्रण में रखते हुए त्वचा की रंगत और सौन्दर्यता को निखारने में सहायक होता है। पाचक पित्त' अमाशय और छोटी आंत में रहता है। यह भोजन को पचाने का कार्य करता है। रञ्जक पित्त यकृत तथा मूत्राशय में रहता है। यह शरीर में रक्त का निर्माण करता है। यह रसिका द्रव्य को रंगत देता है और शारीरिक प्रतिरक्षण को बढ़ावा देता है।

पित्त प्रधान व्यक्ति शारीरिक रूप से मध्यम, गर्म शरीर वाला, पसीना अधिक आने वाला, आँखे लालिमायुक्त होना, अंगों का रंग काला होना, सामान्य से कम बाल होना, शरीर कोमल, झाइयों युक्त होना इत्यादि गुणों से युक्त होता है। सामान्यतः इन्हें मुख का कड़वापन, पीलिया, मानसिक रोग, चर्मरोग, नेत्र विकार और गर्मी के रोग इत्यादि रोग हो जाते हैं। पित्त मानव शरीर को ऊष्मा देता है, यह शरीर को रंगत प्रदान करता है। पित्त, पाचन कर्म, पोषण और संवर्धन का कार्य करता है।

3. कफ:- कफ मानव शरीर का जलीय अंश है। कफ में जल और पृथ्वी महाभूत के गुणों की प्रधानता होती है। कफ शरीर में जलीय अंशीय गुण के कारण द्रव्य पदार्थों को धारण करते हुए शरीर की रक्षा करता है और शारीरिक प्रतिरक्षा गुण का भी संवर्धन करता है।

मानव शरीर में कफ का आश्रयस्थल कण्ठ के ऊपर का भाग, कण्ठ, सिर, गर्दन, वक्षस्थल, हड्डियों का जोड़, उदर का ऊपरीभाग एवं शरीर की मेद धातु है। कफ के असामान्य होने से उष्णता में कमी, मेद की वृद्धि, अजीर्णता, मधुमेह, जरोदर और आमवात आदि अनेक प्रकार के रोगों के होने की सम्भावना रहती है। इसके प्रकृति के कारण मानव में शान्ति, सहानुभूति, साहसीपन, क्षमावानता और स्नेह गुणों का वास होता है।

आयुर्वेद में कफ पाँच प्रकार का होता है - 'तर्पक कफ' की स्थिति शरीर में सिर होता है। यह कफ मानव शरीर के मस्तिष्क तथा ज्ञानेन्द्रियों को उनके कार्य निष्पादन में सहायता प्रदान करता हैं 'बोधक कफ' मानव शरीर के जीभ और आहारनाल अङ्ग में व्यवस्थित होता है। यह स्वाद अर्थात् भोजन में स्वाद का अनुग्रह करता है। 'अवलम्बक कफ' मानव शरीर के हृदय और त्रिक में अवस्थित होकर अपना कार्य निष्पादित करता है। यह हृदय के सुचारु रूप से चलने में सहायक होता है। क्लेदक कफ' शरीर के अमाशय में रहता है। हमजब भोजन करते हैं, भोजन छोटे-छोटे कणों में बँट जाता है, तब क्लेदक कफ' भोजन को आद्रता अर्थात् नमी या द्रव्यता देता है। श्लेष्मक कफ' मानव शरीर के हड्डियों के समस्त जोड़ों में विद्यमान रहता है। यह शरीर में हड्डियों को सुदृढ़ता और शक्ति प्रदान करता है।

कफ प्रधान व्यक्ति सुन्दर, शारीरिक रूप से बलवान्, सुन्दर बालों वाले, बड़े और सुन्दर नेत्र वालें, धीरे-धीरे भोजन करने वाले, निद्रालु स्वभाव वाले इत्यादि होते हैं। सामान्यतः इन्हें भूख न लगना, शरीर में भारीपन, आलस, मोटापा, स्मरण शक्ति का विनाश, जोड़ों का दर्द इत्यादि रोग हो सकते हैं, कफ प्रधान व्यक्ति के वर्षा ऋतु और शीत ऋतु प्रतिकूल होती है। इन्हें मोयपा जल्दी ग्रसित कर लेता है।

इस प्रकार यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि वात, पित और कफ एक -दूसरे के पूरक हैं और मिलकर ही कार्य करते हैं।

इनकी साम्यावस्था का नाम ही स्वास्थ्य है।

Lecture by-

Dr. Ritu Mishra

5th sem.

Department of Sanskrit

Shivaji College.